ॐ ओ३म् ॐ

ओङ्कार उपासना।

मनुष्य स्वभाव ही से किसी न किसी का उपासक है। इस में उपासना वृत्ति नैसर्गिक है कृत्रिम नहीं, विद्वानों ने जङ्गली जातियों में भी उनके वुद्धि विकास के अनुसार उपासना वृति का अस्तित्व देखा है। इतिहास के मन्दिर में प्रविष्ट होकर किसी जाति के यदि पुरातनसे पुरातन वर्ष पत्र को निकाला जाय, तो उसमें ऐसा एक भी दिन न मिलेगा, जब कि वह उपासना शून्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मण्डल को मृत्यु लोक में अवतार धारण करते समय ही उपासना वृत्ति के तार में पिरो दिया गया है कि कहीं वह अमर लोक से विमुख न हो जाय, और इसका अनन्त के साथ सम्बन्ध बना रहे। सूर्य्य देव जिस प्रकार अपने से बिछुड़े हुए ग्रहों को अपने आकर्षण द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं इसी प्रकार परमात्मदेव

अपनी अपार दया से परमपद से पतित मायाभिमुख प्राणी को अपनी ओर खीचते है और यह आकर्षण परम सुख की प्राप्ति की अकाक्षा के रूप में सब मनुष्यों में प्रत्यक्ष है। तीन गुणों से मिश्रित सृष्टि में, धूप छाया की भांति परिवर्तनशील जगत् में परम सुख की प्राप्ति मानना "मृगतृष्णा" है। क्योंकि दृश्य पदार्थ देश और काल से घिरे हुए हैं, इसलिए अल्प है, परम नही जो वस्तु अल्प है उससे परम सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? परम सुख की प्राप्ति और परमानन्द की उपलब्धि तो देश काल से ऊपर परम प्रभु परमात्मादेव ही के लाभ से हो सकती है, अन्यथा नही। इस समझ को सन्त लोग आत्मिक विवेक कहते हैं। आत्मिक विवेक युक्त विवेकी भक्तजन परम सुख की प्राप्ति के लिए परमात्मदेव का जो ध्यान, आराधना और चिन्तन करते है यही परम पाविनी उपासना है॥

गुरु भक्ति

आदि काल ही से सन्त लोग यह कहते आये हैं कि आत्मिक लोक की यात्रा में सफलता, बिना गुरमुख हुए तथा गुरु सेवन किए नही उपलब्ध होती। जब तक गुरुदेव अपने द्वार के दीन भक्त पर दया न करें, उसको मार्ग पर न चलायें, और यात्रा मे आने वाली विघ्न बाधाओ से न बचाये, तब तक आत्मिक कल्याण की आशा दुराशा है। इसलिए इस मार्ग के जिज्ञासु यात्री और प्रेमी सब के पूर्व

गुरुदेव की गवेषणा करते है। दूर दूर देशो मे पर्वतो पर नदी नालो के किनारे और गिरी-गुफाओ मे गुरु दर्शन के लिए घूमते फिरते हैं; पर किसी भाग्य वाले ही को कदाचित् कही आत्मनिष्ठ महात्मा का मिलाप होता है। नही तो बहुतेरे बेचारे भोले भाले भक्त व्यर्थ ही भटकने रहते है, अथवा ढोङ्ग वा दम्भ मे फस कर तन, धन पूजा कर निराश रह जाते है। सच है कि इस प्रलोभनपूर्ण पृथिवी पर पर्य्यटन करने वाले प्राणियो मे "आश्चर्य्योऽस्य वक्ता" इस परमात्मदेव का बखान करने वाला अनुभवी पुरुष आश्चर्य दुर्लभ) है। मानुषी देहधारी गुरु का मिलाप दुर्लभ मान कर कोई मनुष्य अपने कल्याण से वञ्चित न रह जाय, इस लिए परम सन्त योगीराज श्रीपतञ्जलि ईश्वर भक्ति से समाधि सिद्धि बताते हुए उपदेश करते है.-"सपूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्'"-परमात्मदेव काल के घेरे से ऊपर होने से ब्रह्मा और मनु आदि पूर्वज महात्माओ के भी गुरु है। इसका तात्पर्य्य यही है कि परम पद का प्रेमी परमात्मदेव ही को परम गुरु माने और आराधना काल मे उसी की दया और सहायता की याचना किया करे॥

न जाने किस समय गुरु सहायता की आवश्यकता आ पड़े इस लिए अभ्यास मे गुरु की समीपता बड़ी

आवश्यक होती है, सो सर्वव्यापक तथा पूर्ण स्वरूप से भक्त हृदय मे विराजमान भगवान् से अधिक अन्य कौन समीप होगा ? अतएव जगद्गुरु जगदीश्वर अधिकतम पास होने से गुरु भावना के सर्वोतम पात्र है। वेद मार्ग में तो भक्त वत्सल भगवान् माता पिता बन्धु और सखा आदि सम्बन्धों से सम्बोधन किए गये है। भक्त को यह धारणा करनी चाहिए, कि परम पुरुष परम गुरु परमात्मदेव मेरे पास है। अपने परम प्रेम के तार से मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहे है, वह मेरे पास हैं, सहायता में तत्पर हैं और उस दयालुदेव की दया से मेरे मार्ग के सकल विघ्न दूर और चूर हो रहे है॥

भक्ति धर्म्म में गुरु चिन्तन, गुरु आराधना और गुरु ध्यानादि बताया जाता है। यहाँ तक गुरु प्रेम की प्रथा इस पथ मे है कि गुरु ही को सर्वस्व जान कर भक्त लोग गुरु की उपस्थिति मे उस का, और अनुपस्थिति मे उस की आकृति का ध्यान करने लग जाते हैं। योग के सम्पूर्ण रहस्यो के ज्ञाता भक्ति धर्म के मर्मज्ञ महामुनी पतञ्जलि को यह बात सर्वथा ज्ञात थी कि जो गुरुदेव उन्होंने बताया है वह आकार रहित अकाय है वह अनन्त है, सर्वत्र परिपूर्ण है पाचों ज्ञानेन्द्रिया मन समेत अपनी सारी दौड़ लगाकर भी उस तक नही पहुंच सकती। तब उस गुरुदेव को आह्वान करने उस

का प्रेम अपने में सम्वाहन करने और उस भगवान् को अपना भक्तिभाजन बनाने का कौन साधन है ? इसका समाधान योगीराज पतञ्जलि ने बताया है कि "तस्य वाचकः प्रणवः" उस गुरुदेव को मन मन्दिर में आह्वान करने के लिये उस का वाचक (प्रकट कर्ता अथवा नाम) ओ३म् है। सनातन भक्ति धर्म में अपने गुरु में परम प्रेम और परा भक्ति उत्पन्न करने के लिए ओम् परम और चरम साधन है। इसी ओम् नाम से असंख्य भक्तजन सफल मनोरथ और सिद्ध काम हो गये । इस समय भी सैकड़ों सन्त जन इसी नाम में धुन लगा निमग्न रहते हैं। इस नाम का जितना अधिका प्रभाव है इस से जितनी शीघ्र सिद्धि और समाधि होती है उसका अंश भी अन्य साधनों में मिलना दुर्लभ है।

ओम् का महत्व

ओम् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है इस में ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है। इसमें ईश्वर के सब गुण आ जाते हैं। ऐसा पूर्ण ऐसा उत्तम ईश्वर सम्बन्धी दूसरा नाम नहीं मिलता। ओम् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नही पड़ती। परन्तु सब भाषाओं के ओम् से भिन्न ईश्वर सम्बन्धी नामों के साथ विशेषण लगाए बिना परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप का बोध नहीं होता।

ऐश्वर्य्यवान् होने से परमात्मा का नाम ईश्वर है परन्तु इस नाम से ईश्वर की सर्वज्ञता सर्व शक्तिमत्ता और पूर्णानन्दता सिद्ध नही होती । यह नाम राजो महाराजो के लिए भी साहित्य मे उपयुक्त हुआ है । परमात्मा कहने से सब से बडा आत्मा इसी अर्थ का बोध होता है न कि सर्वज्ञान सर्वशक्तिमत्व आदि गुणो का सर्वज्ञ कहने से ईश्वर सर्वज्ञानी है और सर्व शक्तिमान् कहने से ईश्वर सर्व शक्ति युक्त है इन्ही गुणो का बोध होता है शेष गुणो का नही । जिस प्रकार पण्डित लोग ईश्वर अथवा परमात्मा आदि शब्दो के साथ अनन्त ज्ञान जीवन शक्ति और आनन्द आदि विशेषण लगाते है इसी प्रकार मौलवी और पादरी लोग भी खुदा अल्लाह और गौड आदि ईश्वर नामो के साथ अनेक विशेषण लगा कर ही अपने भाव को प्रकाशित करते है । जैसे परमेश्वर, खुदा अथवा गौड सर्व शक्तिमान, अविनाशी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और परमानन्दमय है यह कहा जाता है वैसे ओम् के साथ सर्व शक्ति आदि विशेषण जोड कर ओम् का वर्णन करना अनावश्यक है । ओम् कहना ही भक्त के लिए पर्य्याप्त है क्योकि बीज मे पेड की भाति सब विशेषण इसी मे समाये हुए है ।

ओम् में सर्वशक्तिमत्ता

'अ' 'उ' और 'म्' इन तीन अक्षरों से ओम् शब्द की सिद्धि होती है। 'अ' स्वर है। वैय्याकरण 'स्वय राजते इति स्वर" जो स्वय प्रकाशित हो, जिसको दूसरे की सहायता की उपेक्षा न हो, उसे स्वर कहते है। कोई भी स्वर हीन व्यञ्जन बोला नही जाता, कोई भी शब्द अथवा वाक्य केवल व्यञ्जनो से बन नही सकता एव कोई भी सत्ता जिसका आश्रय 'अ' (ईश्वर) न हो, हो नही सकती और कोई भी रचना अथवा कार्य्य प्रकट नही हो सकता जब तक कि उसके होने मे अ' (ईश्वर) की प्रेरणा 'अ' (ईश्वर) की विद्यमानता न हो अक्षर माला म व्यञ्जन तुच्छ शक्ति युक्त है वे अपने आप को भी प्रकट नही कर सकते, परन्तु स्वर सर्व शक्तिमान है। जहा स्वर किसी अन्य की सहायता के बिना स्वय प्रकट होता है वहा सारे के सारे व्यञ्जनो के प्रकट होने का मूल कारण भी है। यही दशा पदाथ माला और काय्य माला की है। 'अ' स भिन्न सर्व पदार्थ और काय्य व्यञ्जन अक्षरो की तरह है। इन सब का जीवन और प्रकाशक अ'है अ' (ईश्वर) सर्वशक्तिमान है। उसे किसी अन्य पदार्थ की सहायता की अपेक्षा नही। वह स्वय प्रकाशित है और व्यञ्जनो मे स्वर की भान्ति वस्तुमात्र म ओत प्रोत होकर उसे जीवन सत्ता और प्रकाश दे रहा है। वह सब का अन्तरात्मा है। यदि

यह मूल सत्ता न हो तो अन्य सर्व सत्ताओं का अभाव हो जाय "तमेव भान्तमनु भाति सर्वम्" उसी के प्रकाशित होने से अन्य सब पदार्थ प्रकाश पाते हैं ।।

सर्वशक्तिमान् का अर्थ

'सर्वशक्तिमान' शब्द का यह अर्थ करना कि ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है अथवा सब कुछ कर सकता है जहाँ भक्ति भाव की त्रुटि का बोधक है वहाँ यह अर्थ अनेक दोषों से भी पूर्ण है। प्रेम से पूर्ण परम पवित्र पिता कभी अपने प्यारे परम भक्त पुत्र को नरक भेज सकता है ? कभी कोई भक्त विचार सकता है कि ईश्वर परमात्मा भी पापाचरण करता है भगवद्-भक्तों के हृदय में तो परमात्मदेव दया, प्रेम पवित्रता और न्यायादि गुण युक्त ही विराजते हैं। जब कोई भी ईश्वरवादी बुद्धीमान यह नहीं मानता कि परमात्मा अन्याय कर सकता है पाप कर सकता है अपने सारे ज्ञान को भुला सकता है अपने आप का सर्वथा नाश कर सकता है अपने जैसा ईश्वर उत्पन्न कर सकता है अथवा अपनी प्रजा को अपने राज्य से बाहर निकाल सकता है तो 'सर्वशक्तिमान' का अर्थ जो चाहे सो करता है अथवा कर सकता है कितना भक्ति शून्य युक्ति रहित और भूल से भरा हुआ है यह जानना बहुत ही सुगम है।

भक्ति धर्म्म मे ईश्वर पवित्र है, प्रेम है, दया है, अतुल है और सब दोष रहित है इसी लिए 'सर्व शक्तिमान्' का अर्थ सब शक्तिया परमात्मदव मे है, किया जाता है। सारी शक्तिया स्वरूप म पवित्र है। वस्तु को जानने देखने की एक शक्ति है, परन्तु किसी मनुष्य को शत्रु समझना, किसी वस्तु को चुराने के लिए अथवा अनुचि त लोभ से देखना यह दोष जानने और देखने की शक्ति का नही किन्तु बुरी भावना का दोष है। इसी प्रकार सुनन करने और विचारने आदि की शक्तियो मे दाष नही हैं इन म दोष राग और द्वेष से होते हैं। राग और द्वेष से प्ररित होकर जो शक्तियो का उलटा, अनुचित, अशुद्ध, और अनीति युक्त व्यापार है वही बुरी भावना जन्य दाष है। बुरी भावना और राग द्वेश अज्ञान से होते हैं। परमात्मदेव पूण ज्ञानी है अतएव बुरे भावो से रहित है और राग द्वेष से विमुक्त हैं। इस लिए उन की शक्तियो मे दोषो की सम्भावना भी नही है ॥

सत्य को असत्य करना, असत्य को सत्य करना, अस्ति को नास्ति बनाना, और नास्ति को अस्ति वनाना भी 'सर्व शक्तिमान' का अर्थ नही है। क्योकि उस का ज्ञान एक रस है देश काल से ऊपर है, सत्य और यथाथ है, इस लिए ईश्वर जो वस्तु है उस का होना और जो नही है उस की नास्ति को एक रस जानता है। उसका ज्ञान काल मे नही घिरता। भूत भविष्यत्

और वतमान के भेद एक देशी पदार्थों के लिए है अनन्त के लिए नही। अत परमात्मा के ज्ञान मे जो अभाव है, शून्य है, नास्ति है, यदि वह भाव और अस्ति हो जाय तो उस का ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान हो जाय। जैसे गणित शास्त्र मे एक और एक, मिल के दो बनते हैं, यह जानते हुए भी किसी क्षण कोई यह समझने लग जाय कि एक और एक मिल के तीन अथवा चार बनते हैं तो उस का सारा का सारा गणित ज्ञान मिथ्या हो जायगा। ऐसे ही परमात्मा का नास्ति ज्ञान आस्ति हो जाय अभाव ज्ञान भाव हो जाय तो जहा किसी भी वस्तु की सत्यता न रहेगी वहा परमात्मा का ज्ञान भी सिद्ध न हो सकेगा॥

तात्पर्य यह है कि सर्व शक्तिमान् का अर्थ जो लोग यह करते है, कि परमात्मा जो चाहे करता है अथवा कर सकता है और अभाव को भाव मे, और भाव को अभाव दोबारा मे लाता है यह भ्रममूलक विचार है। भक्तो के भगवान् मे सर्व शक्तियां है, पर शुद्ध हैं दोष रहित है और एक रस हैं॥

ओम् सर्वज्ञ है

मनुष्य का सारा ज्ञान और सारे विचार शब्दो मे ही पिरोए हुए है। हम किसी भी वस्तु का ध्यान करें किसी भी वस्तु को सोचें हमारा ध्यान और सोचना शब्दो ही में होगा। यह सत्य है कि हमारा मन हमारी बुद्धी शब्द क्षत्र से बाहर कभी नहीं चले और न ही चलना जानते हैं। जो शब्द मानुषी ज्ञान आधार हैं उनकी रचना अक्षरो के सयोग से होती है। जो शब्द मिल कर ज्ञान के आधार शब्दों को जन्म देते हैं उन सब मे आदिम अक्षर और अपने से भिन्न सब अक्षरो का प्रकाशक अक्षर 'अ' है। दूसरे शब्दों में 'अ' है। शब्दों में कहा जाय तो 'अ' आदिम अक्षर है। अन्य सब अक्षरो मे 'अ' है। अक्षरो मे शब्द है और शब्दो मे ज्ञान है। कोई भी अक्षर न हो तो शब्द मान का अभाव हो जाय। शब्दो के अभाव से ज्ञान का आभाव सहज सिद्धि है। इस लिए सारे अक्षरो व व शब्दो के प्रकाशक 'अ' ही मे सर्व ज्ञान है। 'अ' जहां वर्णमाला मे वर्ण है वहा 'ओम्' का भी भाग है इस से महात्मा लोग सिद्ध करते है कि जैसे 'अ' वर्ण मे अन्य सब वर्ण और शब्द जन्य सारा ज्ञान है इसी प्रकार 'अ' ईश्वर मे सम्पूर्ण ज्ञान है। 'अ' (परमात्मा) सर्वज्ञ सर्वदर्शी है ॥

'अ' अक्षरों में आदि अक्षर है। इसी से वर्णों, शब्दों और शब्द जन्य ज्ञानों की उत्पत्ति है। अध्यात्म वाद में 'अ' परमात्मा का नाम है और यह सूचित करता है कि परमेश्वर ही से ज्ञान की उत्पत्ति हुई है। और वही ज्ञान का आदि स्रोत है।

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है। अन्य सब वर्णों की ध्वनि कण्ठ के ऊपर से निकलती है। हां 'क' और 'ह' की ध्वनि का स्थान भी कण्ठ है परन्तु जब तक इनके साथ स्वर न हो तो ये वर्ण बोले नहीं जा सकते। इन सबसे सन्त लोग यही सिद्ध करते हैं कि सब ज्ञानों, सब ध्वनियों और सब स्वरों का आदिम 'अ' (परमात्मा) है।

जगत् का आदि मध्य और अन्त ओम् है।

ध्वनि की आदि कण्ठ 'अ' से है और मध्य होठों में एवं अन्त नाक में है अर्थात सानुनासिक अक्षरों में है। आदि का प्रतिनिधि 'अ' है सर्वथा होठों में बोला जाने वाला मध्य का प्रतिनिधि 'उ' है। पाञ्च वर्गों में पवर्ग अन्तिम वर्ग है। पाञ्चों वर्गों के वर्णों में अन्त का वर्ण 'म्' है। पाञ्च वर्गों के ङ, ञ, ण, न और म् ये पाञ्च सानुनासिक वर्ण हैं। पाञ्चों सानुनासिकों में अन्तिम सानुनासिक 'म्' है। होठों को बन्द करके नाक में ध्वनि गुञ्जाई जाय तो वह ध्वनि

पूर्णतय: नाक की ध्वनि होगी। और वह ध्वनि अन्तिम होगी। उस से आगे कोई भी ध्वनि गुन्जाई नही जा सकती। ठीक ऐसी ध्वनि 'म्' की है। इसलिए पूर्णता से अन्त का प्रतिनिधि 'म्' है। 'अ' 'उ' और 'म्' से ओम् का प्रकाश होता है। मुनि लोग इस नाम रचना से यह सिद्ध करते हैं कि जैसे ध्वनि की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' परमात्मा से है। यथा ध्वनि के मध्य का पूर्ण प्रतिनिधि 'उ' वर्ण है, तथा सृष्टि के मध्य मे भी इस का आधार और पालन पोषण कर्त्ता 'उ' (परमात्मा) है। जैसे ध्वनि की पूर्णता से समाप्ति 'म्' वर्ण मे है, एवमेव सृष्टि का अन्त, सृष्टि का लय 'म्' (परमात्मा) ही मे है। सारांश आदि मे ओम् है, और अन्त मे भी ओम् ही है। ओम् से रचना ओम् से पालना, और ओम् ही से लय है।

'अ' ध्वनि मुख के भीतर और सूक्ष्म है। 'उ' की ध्वनि मुख से बहार और स्थूल है और 'म्' की ध्वनि समाप्ति सूचक, और स्थूल सूक्ष्मता मिश्रित है। सृष्टि की सूक्ष्म दशा मे ओम् है, स्थूल अवस्था मे ओम् है, और समाप्ति पर स्थूल सूक्ष्मता दशा मे भी ओम् ही है।

ओम् सर्वान्तर्यामी, सब का आधार, आश्रय और जीवन है

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है। इस के निकलने में जीभ, तालु, होठो और नाक में गति उत्पन्न करनी नही पड़ती। 'अ' की ध्वनि किसी की अपेक्षा रहित स्वतन्त्र सङ्केत भी। इस प्रकार का स्वतन्त्र सङ्केत है। विस्तृत कण्ठ से जीभ आदि हिलाए बिना जो आकृति बनती है, पण्डितो के मत में वही यह। आकृति अथवा सङ्केत है। अन्य सब स्वरों मे 'अ' की ध्वनि मिली हुई है। कण्ट के बिना केवल जीभ, केवल तालु, केवल होठो, और केवल नासिका से कोई भी वर्ण उच्चारण नही किया जा सकता। जो भी स्वर निकालो अथवा आलापो उस मे कण्ठ का स्वर अवश्य होगा। जो भी वर्ण उच्चारण करो उस में 'अ' की ध्वनि अवश्यमेव होगी, जैसे कण्ठ की ध्वनि, जीभ की ध्वनि में, तालु की ध्वनि मे, होठो की ध्वनि, मे, नासिका की ध्वनि में रमी हुई है, और सब ध्वनियों का आधार आश्रय और जीवन है, इस के बिना कोई भी ध्वनि

नही निकाली जा सकती, ऐसी ही 'अ' सब वर्णों मे रमा हुआ है। सब का आधार आश्रय और जीवन है 'अ' का उच्चारण बिना मिलाये अन्य किसी भी वर्ण का उच्चारण नही हो सकता। 'अ' ही के आधीन सब वर्णो की सत्ता है।

यथा 'अ' सब वर्णों मे रमा हुआ है, अन्य वर्णों के उच्चारण का आधार आश्रय और जीवन है। वह स्वय स्वतन्त्र है। अन्य सब वर्ग परतन्त्र है 'अ' के आधीन हैं। ऐसे ही 'अ' (ओम्) सर्वान्तर्यामी है, सब मे रमा हुआ है और स्वतन्त्र है। अन्य सारे पदार्थ इसके समीप ऐसे ही है जैसे अवर्ण के समीप शेष सम्पूर्ण वर्ण। अतएव 'ओम्' सब पदार्थो का आधार आश्रय और जीवन है। सब सत्ताऐं परतन्त्र है और 'ओम्' के आधीन है। सबका अन्तरात्मा ओम् है।

अवर्ण की। ऐसी आकृति सब वर्णो मे ज्ञानियो ने सिद्ध की है। इसका भी आत्मवाद मे यही तात्पर्य है कि ओम् प्रत्यक वस्तु मे व्यापक और विद्यमान है।

ओम् आनन्दय और प्रेम स्वरूप है।

'अ' का उच्चारण अपने स्वरूप मे पूर्ण है। इसको किसी दूसरे वण की सहायता की अपेक्षा नही। सारे वर्ण 'अ' के

विना बोले नही जाते, अतएव वे अपूर्ण और अधूरे हैं। अवर्ण का उच्चारण सब वर्णो के उच्चारण में रमा हुआ है, यहा तक कि शब्द मात्र मे अवर्ण की विद्यमानता है, इसलिए अवर्ण सब वर्णो और सब शब्दो मे व्यापक वस्तु ही महान होती है। अतएव-अवर्ण पूर्ण, व्यापक और महान् है। अध्यात्मवाद मे 'अ' से ओम् बनता है। जैसे वर्णमाला मे अवर्णपूर्ण वर्ण है, अन्य सारे वर्णो में व्यापक है, और अन्य सब वर्णों से महान है, ऐसे ही ओम स्वरूप मे पूर्ण है। किसी भी पदार्थ की अपेक्षा नही रखता। अन्य सारे पदार्थ ओम् के आश्रित हैं। वर्णों मे अवर्णवत् ओम् सब पदार्थो में व्यापक हैं। सबसे महान् है। जो वस्तु पूर्ण और महान् हो वही आनन्दमय हो सकती है, अतएव ओम् आनन्द स्वरूप है। पूर्णानन्दमय ही परम प्रिय स्वरूप हो सकता है, इसलिए भक्त लोग भगवान् को परम प्रेम स्वरूप भी कहते हैं।

ऊपर कहे 'ओम्' के सारे व्याख्यान का सारांश स्वल्प और शास्त्रीय शब्दो में कहा जाय, तो ओम का अर्थ सच्चिदानन्द अथवा अस्ति, भान्ति, प्रिय स्वरूप परमेश्वर है। ओम् भगवान् अनन्त जीवन, अनन्त ज्ञान और परम प्रेम स्वरूप है।

ओम् निराकार है

आकृतियो मे लिखा जाता है। भिन्न भिन्न भाषाओ मे भी उसके भिन्न २ आकार है परन्तु 'ओम्' का उच्चारण 'ओम्' की ध्वनि स्वाभाविक है, किसी ने उसकी कल्पना नही की। ध्वनि सब समयो मे एक रही है, उसमे परिवर्तन हुआ भी नही, और हो भी नही सकता। सब भाषाओं मे वह एकसी है। इसलिए ध्वनि का उच्चारण ही 'ओम्' है, आकृति नही, आकृति केवल सङ्केत मात्र है।

बालक को 'ओम्' का उच्चारण बताये विना आकृति मात्र से 'ओम्' का ज्ञान कदापि नही हो सकता, परन्तु आकृति के ज्ञान से सर्वथा शून्य, जन्मान्ध को ओम् का उच्चारण सुनकर ओम् की ध्वनि का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान हो जाता है। वास्तव मे शब्द का प्रकाश उच्चारण मे होता है, उच्चारण अर्थात् ध्वनि निराकार है, अक्षर और शब्द दोनो है। इसलिए सभी दार्शनिक पंडित शब्द को निराकार मानते चले आए है।

ओम् नित्य है

आकृति का ज्ञान आखो से और शब्द का श्रोत्र से होता है, आखो से नही। आकृतियो मे परिवर्त्तन होता रहता है, वे बनती भी है और बिगडती भी। यदि शब्द भी आकारवान् होता तो बनता बिगडता रहता, और अनित्य होता, कुशाग्र बुद्धि, आर्य्य दार्शनिक शब्द को निराकार और नित्य मानते

हैं। 'ओम्' शब्द है, इसीलिए निराकार नित्य और सनातन है। इसका वाच्य भी निराकार नित्य और सनातन है।

ओम् अजन्मा है

वैय्याकर्णों के मत में "ओमिति अव्ययम्" ओम् अव्यय है। वे अव्यय उस शब्द को कहते है जो विभक्ति लिङ्ग, और वचनो के परिवर्त्तन मे न आवे। स्वरूप न बदले, जैसा है वैसा ही बना रहे। ओम् शब्द का वाच्य सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वरदेव भी परिवर्तन मे नही आता, अव्यय, अजन्मा और एक रस है।

ओम् एक है

ओम् से भिन्न परमात्मदेव के सारे नामो के एक दो और बहुवचन होते हैं यथा परमात्मा, परमात्मानौ परमात्मनः, एक परमात्मा, दो परमात्मा और बहुत परमात्मा। इसी प्रकार ईश्वर आदि शब्दो के एक दो और बहु वचन बनते है। अन्य भाषाओ मे भी ईश्वर सम्बन्धी नामो मे ऐसा ही परिवर्त्तन होता है, परन्तु 'ओम्' अव्यय है। अव्यय एक रस रहता है। वह परिवर्तन मे नही आता, इसलिए सब वैय्याकर्णों के मत मे ओम् के दो और बहुवचन नही होते, उसका एक ही वचन रहता है क्योंकि 'ओम्' एक ही है।

ओम् स्वीकार अर्थ में

किसी बात के स्वीकार करने के अर्थ मे भी 'ओम्' आता है पुरातन काल मे आर्य्य लोग परमात्मा के परम भक्त थे, प्रत्येक कार्य्य के आरम्भ मे 'ओम' तत्सत् का उच्चारण किया करते थे वे समझते थे कि हमारे कार्यों मे 'ओम्' ही सहायक है वह कार्य्य वैसा ही होगा जिसका जैसा होना ओम् के ज्ञान मे है जैसे कोई भी सेवक, कोई भक्त और कोई भी प्रमी अपने स्वामी अपने भगवान, अपने प्रियतम सखा की आज्ञा इच्छा और अनुमति के बिना कोई कार्य्य नही करता, और किसी वस्तु को स्वीकार नही करता, इसी भाव से प्रभावित, भारत के पुरातन भगवत्भक्त सम्पूण कार्य्यो के आदि मे 'ओम् तत्सत्' और किसी के कथन अथवा पदार्थ के स्वीवार मे केवल 'ओम्' कह कर कार्य्यारम्भ और बात को स्वीकार करते हुए, परमेश्वर की अनुमति की प्रधानता प्रदर्शित करते थे। वह आर्य्य सन्तजन अपन प्रत्येक कार्य्य का ओम् को साक्षी और सहायक समझते हुए अपने कर्मो ही म उसका पूजन किया करते। सब कार्य्यो के आदि मे ओम् नाम का मङ्गल मानना, प्राचीन आर्य्यों की परमेश्वर परायणता का एक उज्वल और ज्वलन्त प्रमाण है।

❀❀❀❀

संकेत से ओम् सर्वत्र पाया जाता है

सब देशो मे संकेत की भाषा मे एकता है। सुख दुःख के सकेत, हर्ष शोक के सकेत प्राय सर्वत्र एकसे हैं, क्रोध, लोभ, मान, ईर्षा, प्रसन्नता, विषाद, भय, अनुकूलता, प्रतिकूलता धैर्य्य, शांति और वीरता आदि का प्रकाश हाथ, मुख, आख और चेहरे आदि की आकृति के संकेत से जब किया जाता है तो प्राय वे सब जातियो और देशो मे समान ही होते है। मनुष्यो के हृदयगत भावो के प्रकाशक सकेतो मे भी सवत्र स्वभाव सिद्धमान्यता है। ऊपर कहा गया है, कि पुरातन आर्यजन सर्व कार्यो मे ईश्वर का नाम स्मरण किया करते थे, हर्ष मे भी ॐ और विषाद मे भी ॐ ही उच्चारण किया करते। जब कभी कोई आश्चर्य्य जनक दृश्य दिखाई देता, कोई आश्चर्य्य जनक बात स्मरण हो आती और आश्चर्य्य घटना घटित हो जाती तो ओम् नाम स्मरण किया जाता, मानो वे महाभाग ऐसी सब बातो मे जगन्नियन्ता ही का नियम काम करता हुआ जानते थे। उपरोक्त भावो के प्रकाश काल मे ॐ का जो तुरन्त उच्चारण होता था, वही भाव प्रकाशक सङ्केत आज आहा! अहह!! ओहो!!! आदि रूपो मे बदल गया है और आर्य्य जाति की अन्य अनेक धार्मिक,

सामाजिक रीतियो नीतियो की भाँति हर्ष विषादादि के समय ओम का सकेत भी अपभ्र श रूप मे सब देशो मे एकसा पाया जाता है। आज भी भक्त और प्रेमी लोग हर्ष विषाद और आश्चर्य आदि के समय परमेश्वर का नाम लेते अवश्य है, पर अपने २ सम्प्रदाय के अनुसार।

वेद के आदि और अन्त में ओम्

महामुनि पाणिनि के मत मे "प्रणवष्टे" ८-२-८९ "यज्ञ कर्मणि टेरोमित्यादेश स्यात्। अप रेतासि जिन्वतोम्" यज्ञ मे वेद मत्रो के अन्त की 'टि' 'स्वर' को ओम् आदेश हो जाय, कहा है, यथा 'जिवन्ति' के इकार को ओम् बनाकर 'जिन्वतोम्' किया गया है, इससे यह सिद्ध हुआ कि वेद के जितने मन्त्र है, उतनी सख्या से ही उनमे ओम् है। ओम् अभ्यादाने ८-२-८७ इस सूत्र से पाणिनि, मन्त्र के आदि मे लुप्त ओ३म् बताते है। इस प्रकार वेद मन्त्रो की सख्या से ओम् सख्या दुगुनी हो जाती है।

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादा-दावन्ते च सर्वदा मनु० २-७४

वेद के मन्त्र के पाठ के आदि अन्त दोनो मे ओम् का

उच्चारण करे। आर्य्यवर महर्षि वेद मन्त्रो के पाठ के समय आदि अन्त मे ओम् नाम का उच्चारण करके अपने जीवन से अपनी क्रिया और भावो से इस बात का सजीव उदाहरण उपस्थित करते थे, कि वे वेद का आदि से अन्त तक ब्रह्मप्रतिपादन ही मुख्य तात्पर्य मानते है। दो वर्तनो से जो वस्तु घिर जाय वैद्य उसे सम्पुट कहते हैं। मन्त्र के आदि अन्त मे 'ओम्' आ जाने से मन्त्र सम्पुट हो जाता है। ऐसे सब मन्त्रो का ओम् से सम्पुट है। यद्यपि वेदो मे प्राकृत विद्याओ का वर्णन है, पर वे विद्यायें ब्रह्म वर्णन मे सम्पुट हो रही है। वेद का मुख्य वर्णन ईश्वर है। मुख्य तात्पय मनुष्यो को भक्त वनाकर भगवान् तक पहुचाना है।

ब्रह्म सूत्रो के निर्माता व्यासदेव 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र ३ अ० १ पा० १–इस सूत्र से वताते है कि वह ब्रह्म ही वेद का विषय है ब्रह्म ही का वेद प्रतिपादन करते हैं 'समन्वायात्' जैसा परब्रह्म का सम्वन्ध विश्व से है वैसा ही साक्षात अथवा परम्परा से सकल वेद मत्रो से भी है कलिकाल मे वेदो के सर्वोपरि ज्ञाता, परम वेद भक्त परम कारुणिक प्रभु दयानन्द भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मे वेद का प्रतिपाद्य वताते हुए लिखते है, कि परमेश्वर ही वेदो का मुख्य अर्थ है और उसमे पृथक जो यह जगत है सो वेदो का गौण अर्थ है। इन दोनो मे से प्रधान का ही ग्रहण होता है। इसस क्या आया कि वेदो का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादन करने मे हैं।

ओम् और आमीन

यह लिखा जा चुका है कि पूर्व काल के आर्य्य लोग प्रत्येक कार्य्य हर्ष, विषाद और आश्चर्य आदि मे यज्ञ के आदि अन्त मे ओम् का उच्चारण किया करते थे। अपने यज्ञो, मन्त्र पाठो और कार्यों के आदि अन्त मे ओम् का उच्चारण करना उनको ओम् मे सम्पुट करना है। दूसरे शब्दो मे अपने यावत् कर्मो को ब्रह्मार्पण करना है। आर्यों के इस ब्रह्मार्पण के समान दूसरा दृष्टांत जगत मे नही है। यह समर्पण आर्यों की निष्कामता और ईश्वर परायणता का प्रबल प्रमाण है। स्वर्गवासी स्वामी रामतीर्थ जी की अनुमति है कि ईसाई आदि धर्मो मे प्रार्थना, के अन्त मे जो आमीन अथवा एमन पढा जाता है, वह ओम् ही का रूपातर है, क्योकि आर्य्य लोग प्रार्थना आदि के अन्त मे ओम् का पाठ करते थे और वही पाठ अन्य शब्दो की भाति एमन, आमीन मे बदल गया है।

धर्मों मे ओम् की विद्यमानता

स्वामी राम के कथनानुसार ईसाई धर्म और इस्लाम मे 'ओम्' आमीन के रूप मे विद्यमान है। कोई २ तो यह भी अनुमान करते हैं कि वाईवल मे जो खुदा कहता है कि मेरा नाम 'I am' है, यह ओम् ही की ओर सकेत है, तिब्बत तथा

अन्य देशो के बौद्ध लोग 'ओम्' मणिपद्म ओम्' इस मन्त्र का जप करते है। जैनमत मे भी ओम् का आदर है। वे लोग इसे बीज अक्षर मानते है कबीर साहब, चरणदास जी आदि सारे सन्त इसको गाते रहे है। खालसापन्थ की ग्रन्थ की वाणी मे भी 'ओकार सतनाम' 'ओङ्कार वेदनिर्मय' इत्यादि अनेक स्थलो में 'ओम् का वर्णन है और तन्त्र ग्रन्थो मे तो 'ओम्' का सहस्त्रो बार वर्णन आया है।

ऊपर के वर्णन से यह भी सिद्ध होता है, कि धार्मिक ससार में सब से अधिक जन 'ओम्' ही का जाप करते है। ईसाइयो और मुसलमानो को न भी गिनें तो बौद्धो मे 'ओम् मणिपद्मे' होने पर ओम् जपने वालो की संख्या सबसे अधिक ही है।

ओम् स्मर

जिस वेद से सारे ज्ञानो का जन्म हुआ है और जो सारे धर्मो का आदि स्रोत है, उस वेद मे किसी ईश्वर नाम के स्मरण का आदेश है तो वह ओम् ही है। 'ओम् क्रतोस्मर' हे मनुष्य ओम् का स्मरण कर 'ओम् खम्ब्रह्म' यजु० ४०-१७ ओम् आकाशवत् निराकार सर्वत्र परिपूर्ण और ब्रह्म है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदु
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इतद्विदुस्त इमे समासते ।

ऋ० म० १-सू-१६४ मन्त्र ३९ ॥

जिस ऋग्वेद के सार परम अक्षर मे सारे लोक और इन्द्रिया स्थित हैं, जो उसको नही जानता वह ऋग्वेद (के पाठ) से क्या करेगा। (और) जो उस अक्षर को जानते है, वे इस ससार मे भली भाति रहते है। इससे अधिक ओम नाम की महत्ता, इससे अधिक ओम् का गौरव और इससे अधिक ओम् का महागायन शब्दो मे और कोई क्या करेगा। वास्तव मे वेद पवित्र ने जो पदवी ओम को दी है, वह परम है।

वैदिक ग्रन्थो मे बार बार ओम का गायन किया गया है और जिन महाभाग भक्तो को उपनिषद् रूपी ब्रह्म मन्दिर मे प्रवेश करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है, वे मुक्त कण्ठ से कहेगे कि उपनिषदे ओम् ही का यश गाती है, और 'ओम्' अक्षर ही की उपासना बताती है। उपनिषदो के पाठ से तो ऐसा प्रतीत होता है, कि यह ब्रह्मविद्या की निर्मल गङ्गा ऋषियो के मस्तक शिखरो से उतर कर ससार को पावन करती हुई अन्त मे ओम् सागर समा रही है।

सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तपासि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छ न्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तत्ते पद सग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।
कठ० १-१५ ।

आत्मज्ञानी गुरु शिष्य को उपदेश करते हुए कहते हैं कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, सारे तप जिसको गा रहे हैं, और जिस पद (प्राप्ति) की इच्छा करते हुए (तपी अथवा ब्रह्मचारी गण) ब्रह्मचय धारण करते है, उस पद को सक्षेप से मैं तुम्हे कहता हू (वही पद) 'ओम् यह पद है । 'ओमत्येव ध्यायथ आत्मान स्वस्तिव पराय तमस• परस्यात्' (मुण्डकोपनिषद्) । महात्मा उपदेश देते है कि हे उपासको ! अन्धकार से पार होने के लिए परमात्मा को 'ओम' ऐसा लक्ष अथवा ध्येय बनाकर चिन्तन करो, तुम्हारा कल्याण हो । सारे माण्डूक्योपनिषद् मे ओम ही का यश गायन किया है। इस उपनिषद्कार महात्मा ने त्रिलोकी का समावेश ओम् म सिद्ध किया है । ओमिति ब्रह्म ओमिद सर्वम्' । तैत्तिरीय उपनिषद मे कहा है, ओम् ब्रह्म है ओम् ही यह सारा विश्व है । उपनिषदो के सम्बन्ध मे शेष इतना कथन पर्याप्त है कि छान्दोग्य और बृहदारण्यक के उपासना भागो म 'ओ३म् उपासना का बडे विस्तार से वर्णन है, उपनिषदो मे वर्णन हुए सब सन्तो की

सम्मति में ओम् ही ब्रह्म, ओम् ही विश्व, ओम् ही प्राण आत्मा और ओम् ही परम ध्येय है, इस लोक और परलोक मे सफल बनाने वाला भी ओम् है, और यही परम अवलम्बन सहारा और भरोसा है।

—०—०—

सब सन्तों में ओम् की उपासना

ब्राह्मण ग्रन्थों से आरम्भ करके पुराणो पयन्त साहित्य मे जितने महात्माओं का वर्णन आया है, सब ओम् के ही उपासक थे। मनु महाराज तो 'ओम' ३ वेदों का सार बताते है, और इसका 'एकाक्षर पर ब्रह्म" पर ब्रह्म कहते है, इन्ही महाराज ने बताया है कि "जपेनैव तु ससिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र सशय." इसमे कोई सशय नही कि ब्राह्मण जप ही से सिद्ध हो जाता है ब्रह्मा से जैमुनि पर्य्यन्त महर्षि मण्डल ओम् ही का उपासक रहा है। रामायण मे वर्णन आता है कि सिद्धाश्रम को जाते हुए, गङ्गा के किनारे, प्रात काल परम कर्मयोगी मङ्गलनाम श्रीराम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण समेत स्नानादि करके "जेपतु परम जपम्" गायत्री सहित 'ओम्' परम को जपा।

एक दिन श्री युधिष्ठिर महाराज प्रात. काल स्नान सन्ध्या आदि से निवृत्त होकर वस्त्रधारण और परिष्कार आदि करके अखण्ड ब्रह्मचारी, शरशय्याशायी भीष्म के दर्शनार्थ जाने की आकांक्षा से प्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के पास गये। युधिष्ठिर जी ने देखा कि श्रीकृष्ण अकम्प और अटल भाव से "ध्यानमेवा पद्यत" ध्यानारूढ है, उस दिन युधिष्ठिर जी श्री कृष्ण महाराज को सङ्ग लेकर भीष्म जी के पास गये और प्रश्न पूछने की आज्ञा लेकर सायं समय हस्तिनापुर लौट आये। श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर से पृथक होकर अपने शयनागार में प्रविष्ट हुए। निर्दोष नीद लेते हुए जब चार घडी रात्रि शेष रही महाराज उठकर बैठ गये, और अपनी सारी इन्द्रियों और चित्त वृत्तियों को एकाग्र करके श्री कृष्ण देव ने उस समय 'दध्यौ ब्रह्म सनातनम्' सनातन ब्रह्म 'ॐ' का चिर तक ध्यान किया।

श्रीकृष्ण जी ने ॐ को एकाक्षरं ब्रह्म' एकाक्षर ब्रह्म कहा है और गीता में यह भी बताया है कि 'वेद्य' पवित्रमोंकारम्' पवित्र ओंकार जानने योग्य है। गीता के पाठ से यह बात निश्चित प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण महाराज के समय ब्रह्मज्ञानी और सारे वैदिक धर्मी लोग प्रत्येक शुभ कर्म के प्रारम्भ मे 'ओम् तत्सत्'-का पाठ पढ़ा करते थे, क्योकि श्रीकृष्ण कहते हैं :—

ओम् तत्सादिति निर्देशो ब्रह्मणास्त्रिविधः स्मृतः

गीता १७-२३।

'ओम् तत् सत्' इन तीन पदों को ब्रह्मनिर्देश कहा गया है। "इसलिए ब्रह्मवादियों के यज्ञ दान तप आदि शास्त्रोक्त कर्म सदा ॐ उच्चारण करके ही किए जाते हैं।" ध्यान में निपुण बौद्ध भिक्षु भी एक अक्षर ॐ ही से अपने आप का निर्वाण करते हैं। श्री शङ्कराचार्य्य इसको प्रतीक मानकर उपासना करना बताते हैं। देशी भाषाओं में अपने भावों को प्रकाशित करने वाले भक्ति धर्म के अनुयायी दादु, कबीर, चेतन, चरण दास श्री नानक जी आदि सन्तजन सीधे अथवा प्रकारान्तर से ॐ ही के भक्त थे। सन्तराज स्वामी दयानन्द जी नियम से नित्य बड़ी देर तक ॐ के ध्यान में लीन हुआ करते थे। महाराज ने सन्यासियों को ॐ का जप करने की प्रबल प्रेरणा की है। स्वामी राम जब विमल विस्तृत आकाश में पूर्णचन्द्र को देखते, जब उन्हे कोई गर्जती हुई नील घटा दिखाई देती, और जब कभी कोई अद्‌भुत दृश्य उनके दृष्टिगोचर होता तभी वे 'ॐ ३' का गायन करने लग जाते, यहा तक कि निमग्न हो जाया करते थे।

इस समय भी सैंकड़ो साधु, सन्यासी, सूफी फकीर, और सज्जन गृहस्थ अपने मन मे ॐ नाम की माला जपते हैं और

परमानन्द की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन इसी शब्द को समझते हैं।

ओम् सोहम्

बहुत से महात्मा जन 'ॐ सोहम्' का श्वास प्रश्वास के साथ जप करते हैं। कइयों को केवल सोहम् का जप करते भी देखा है। गोरक्षा पद्धति, हठ योग, प्रदीप आदि योग ग्रन्थों और चरणदास आदि महात्माओं की वाणियों में सोहम् जाप का अर्थ, वह (ब्रह्म) मैं हूं लोग करने लग गये है। पर महात्माओं के मत में इस अर्थ का आदर नही है। ध्यान विद्या के भेदो को जानने वाले मुनिजन सोहम् को ओम् ही बताते है। जैसे व्याकरण शास्त्र मे प्रत्यया के विधान करते हुए सुगमतार्थ कई अक्षर जोडे जाते है। ऐसे ही श्वास प्रश्वास के साथ जप करते समय सुगमता हो, यह सोचकर नवीन सन्तो ने ॐ के साथ 'स' और 'ह' यह दो अक्षर जोड दिये हैं। भीतर को सास खीचे तो 'सो' की लम्बी ध्वनि प्रतीत होगी और यदि नाक मे धीरे २ बाहर सास छोडते जाये ता 'हम्' की गूंज ज्ञात होगी। इसी क्रम को और स्वाभाविक क्रम सोच कर सज्जनो ने 'ॐ' मे 'स' और 'ह' मिलाए हैं। यदि व्याकरण के व्यर्थ प्रत्यय अक्षरो की भान्ति 'स' 'ह' का बाध कर दिया जाय तो शेष 'ॐ' ही रह जायगा।

ओम् का उच्चारण सुगम और कोमल है।

सब धर्मों की पुस्तकों मे सब देशो की भाषाओं मे और सब सन्तो के रसीले सगीतो मे परमात्मा के जितने नाम आये है, उन सब मे अतीव कोमल, महामधुर, अतिशय सुगम 'ॐ' नाम है। ग्रामों के वासी 'श' आदि का ठीक उच्चारण नहीं कर सकते इसलिए ईश्वर, ईश और खुदा आदि नामो को बिगाड कर ईसर, ईस गुदा पुकारते है। God तो उनसे कहा ही नही जाता। अच्छे से अच्छा पश्चिमी पण्डित भी एक दो दिन मे परमात्मा नहीं कह सकता, किन्तु परमातमा ही कहेगा, पर 'ॐ' नाम ऐसा सुगम, ऐसा कोमल है कि किसी भी देश का वासी, वह ग्रामीण हो चाहे नागर, सुबोध हो चाहे सर्वथा अबोध, अपढ हो चाहे पडित दो चार पल ही मे इसका शुद्ध उच्चारण सीख सकता है। यह नाम कठोरता रहित है सब देशो और मनुष्यों के लिये समान है।

अनुभूति स्वरूपाचार्य-नामक एक व्याकरण के पण्डित हो गये है :—

कहते है कि एक दिन वह किसी नगर मे धुरन्धर पण्डितो के साथ शास्त्रार्थ कर रहे थे इनका ऊपर की दन्तपक्ति का एक दान्त टूटा हुआ था। प्रसङ्ग वश सप्तमी विभक्ति का

बहुबचन पुसु' कहने लगे, परन्तु टूटे दाँत के स्थान मे अकस्मात् फून्क निकल गई और 'पुन्सु के स्थान 'पुन्क्षु' अशुद्ध उच्चारण हो गया। 'पुन्क्षु' शब्द सुनते ही प्रतिपक्षियो ने अपनी जय की घोषणा कर दी। अनुभूतिस्वरूप जी ने अपने 'पुन्क्षु' को शास्त्र सम्मत सिद्ध कर दिखाने के लिए एक दिन का अवकाश मागा और वह अवकाश उन्हे दे दिया गया। रात्रि भर मे सारस्वत व्याकरण की रचना की गई, और अगले दिन आकर आचार्य्य जी ने अपने निशिनिर्मित व्याकरण से 'पुन्क्षु' शब्द की सिद्धि प्रतिपक्षियो के सन्मुख उपस्थित की।

ऊपर की कथा के कथन का यही प्रयोजन है, कि यदि किसी के मुह मे दान्त न हो वह जिन शब्दो मे दान्तो से बोले जाने वाले अक्षर आते है उन शब्दो को नही बोल सकता। इसी लिए बच्चो और बूढो के लिए गुदा और गाड आदि नामो का उच्चारण कठिन हो जाता है। किसी मनुष्य की जीभ कट गई हो तो वह भी तकारादि अक्षरो युक्त शब्दो को नही बोल सकता। तुतले और हकले मनुष्यो की जो दशा बोलते समय होती है, और जो अक्षरो का सत्यानाश वे करते हैं, उसे सब ही जानते हैं। पर गूङ्गा, बेचारा तो सारा बल लगा कर भी शब्द नही बोल सकता। हा एक अक्षर है जिसे बच्चा, बूढ जीभ कटा, तुतला, हकला और गूगा भी बडी सुगमता से बोल सकता है, और वह अक्षर ओम् है। दान्त मुँह मे न हो, जीभ कट गई हो तो तुतले हकले और गूगे पन मे भी परमात्मा की भक्ति से कोई वञ्चित नही किया गया। ओम् उच्चारण मे दान्त और जीभ आदि के हिलने का काम ही नही है, गला

ठीक होना चाहिये, इस मे केवल कण्ठ का काम है। कण्ठ को खोल कर लम्बे ओ की ध्वनि गुंजाओ और अन्त मे होंठ बन्द कर दो, अथवा 'ओं' ध्वनि को अपने आप शान्त होने दो, सास समाप्त होने के समय 'ओ' की ध्वनि, नाक मे धीमी धीमी गुन्जने लग जावेगी, उस समय 'ओम्' का उच्चारण पूर्ण हो जावेगा। किसी मनुष्य का कण्ठ तभी बन्द होता है जब उसके जीवन के पल समाप्त हो जाते है। मनुष्य के अन्त काल तक उस का गला बना रहता है, इससे मनुष्य जीवन के अन्तिम पल पर्य्यन्त परमात्मदेव के पवित्र नाम की डोर पकड सकता है, और स्वर्गारोहण कर सकता है।

जातकर्म संस्कार और ओम्

आर्य्य लोग संस्कारों के महत्व को आदि काल से मनाते चले आये है, जैसे औषधियों की बारबार भावना व पुट देने से वे प्रबल हो जाता है, जैसे धातुओं में शोधन आदि क्रियाओं से पुष्टि और प्रबलता आजाती है, वैसे ही संस्कारो से मनुष्य जाति की प्रबलता हो जाती है।

संस्कार पद्धति के अनुसार जब बालक का जन्म हो तभी उसका पिता सुवर्ण शलाका को घृत और मधु लगाकर नवजात बालक की जीभ पर बडे कोमल हाथ से 'ओ३म्' लिखे और उस दूज के चाद के दर्शनों से प्राप्त हुई प्रसन्नता का प्रकाश "अङ्गादङ्गात्सम्भवसि" इत्यादि पाठ पढ कर करे। उसी समय उसके कान में "वेदोऽसि" तू वेद है ये शब्द कहे।

जन्म से ही बालक की जीभ पर ओम् लिखकर वैदिक पिता स्वसन्तान को इस भाव से प्रभावित करता है। उस पर यह भाव प्रकाशित करता है कि मेरे चित के चाद तेरी जीभ पर पहले पहिल विराजने वाला शब्द 'ओ३म्' है तेरी जीभ पर सदा रहने योग्य कोई नाम है तो यह 'ओम' है।

घृत और मधु यह दोनो पदार्थ रोगो को दूर करने वाले हैं, पुष्टि के देने वाले हैं, इनसे परमेश्वर का नाम 'ओ३म्' लिखने

का यह तात्पर्य्य है कि घृत से अधिक पुष्टि देने वाला, रोग नाशक, मधु से भी अधिक मधुर और दोष विनाशक ईश्वर का 'ओ३म्' नाम है। रसना का इसका रस सदा लेत रहना चाहिए।

यद्यपि हीरा, मोती आदि रत्न बहुमूल्य है, उनका बडा आदर है, यह भी ठीक है कि कभी २ एक दो तोले भर के हीरे की बराबरी सेरो सोना नही कर सकता, पर आग में पड़ने से जहां सारे रत्न कोयला अथवा राख हो जाते है, वहा आग में पडकर सुवर्ण अधिक उज्वल हो जाता है और अतिशय चमकने लगता है। इसलिए वास्तविक धन सम्पत्ति सोना है, जिसका नाश अग्नि भी नही कर सकती। पुत्र की जीभ पर सोने की शलाका से 'ओ३म्' लिखते समय, मानो यह प्रकट किया जाता है कि हे बालक! सोने से अधिक मूल्यवान् सदा उज्वल रहने वाला धन आत्मिक धन है और वह 'ओ३म्'। वैदिक माता पिता अपने प्यारे पुत्री पुत्र को पहले पहिल कोई सम्पत्ति, कोई धन और कोई वस्तु देते है, कि जो बच्चे को दूध देने से भी प्रथम देनी लिखी है तो वह आत्मिक सम्पति है। परमात्मा का 'ओ३म्' नाम है।

सुवर्ण का रङ्ग सब रङ्गो मे उत्तम है, प्रभात मे ऊषा म सुवर्ण रङ्ग ही की झलक होती है जिससे सारे ससार के कवि

इस पर मोहित हैं, मन को मुग्ध बना देने वाला सन्ध्या का सौन्दर्य्य, सुवर्ण परिष्कार के कारण ही कविता में इतना ऊपा पद पाया गया है। सब ऋतुओ का राजा वसन्त समझा जाता है, उसका वेश भी सुवर्ण रङ्ग से रङ्गा गया है आर्यों में विवाह के समय केशरी वस्त्र धारण किये जाते है। अथवा उत्तम रंग जानकर केशर के छींटे दिये जाते है। - आर्य राजपूत सग्राम जाते समय केशरिया वेप धारण किया करते थे। केशर का रङ्ग भी सुवर्ण रङ्ग के समान है। इसलिए उक्त समयो के वेपो से प्रकट किया जाता है कि सर्वोत्तम प्रसन्नता के भाव सुवर्णमय है, कर्तव्य परायण वीर क्षत्रीय के भाव सुवर्ण रङ्ग रञ्जित है।

आदर्श जीवन मर्यादा पुरुपोतम श्री राम और ज्ञान के सागर श्री कृष्ण भी केशरी ही दुपट्टा पैहरा करते थे, इससे यह कल्पना हो सकती है कि सर्वोत्तम कर्म योग के विचारो युक्त आत्माओं और विशुद्ध आत्म ज्ञानियों को भी सुवर्ण रङ्ग ही प्रिय लगता है। लगना चाहिए भी, क्योकि सुवर्णमय आचार कर्त्तव्य कर्मयोग है, सुवर्णमय विचार, सङ्कल्प और भाव आत्म ज्ञान के लक्षण है। आर्य्य देश के लोग देवताओं पर भी केशर चढाते हुए मानो यह प्रदर्पित कर रहे हैं, कि किसी का पूजन किसी की विनय करना,, सुवर्ण रूप विचारवान् व्यक्ति का ही काम है।

आत्मवादियो के मत मे प्रात काल जागते समय ही, नत्र बन्द करके प्रभु का नाम जपते हुए सुवर्ण रग देखने का यत्न करना चाहिए। प्रसन्नता, सफलता और निरोगता का रङ्ग सुवर्ण है, यदि सुवर्ण रङ्ग स्थिरता से दीखने लग जाय, तो तन मन मे प्रसन्नता की वृद्धि और स्थिति लाभ होती है। प्रभात मे जागना और धर्म ग्रथ आदि का चिन्तन करना मनु भगवान् ने बताया है। ऐसे सुवर्ण समय मे सुवर्ण विचारो का उत्पन्न होना बहुत सम्भव है।

प्रात और सायङ्काल का सूर्य्य सुवर्ण पिण्ड के समान दीख पडता है, पर्वतशिखर पर से अथवा सागर गत जहाज मे से जिस किसी को कभी सूर्य्योदय अथवा सूर्य्यास्त का दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वह मुक्त कण्ठ से कहेगा, कि उस समय सूर्य्यदेव सुवर्ण स्वरूप बने हुए होते हैं, और ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो पूर्व अथवा पश्चिम मे कोई लम्बा चौडा सुवर्ण पर्वत पिघल गया है। आर्य्यों के धर्म ग्रन्थो मे प्रात पूर्वाभिमुख और साय पश्चिमाभिमुख होकर सन्ध्या जपने का विधान है। सूर्य्याभिमुख होकर सन्ध्या जपने पर शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक अनेक लाभ है। सन्ध्या रूप सुवर्ण विचार सुवर्ण आचार मे जब एक भक्त निमग्न हो, उसके लिए कितनी आनन्द की बात है, कि जिस समय मे सन्ध्या जपता

है, वह सुवर्णमय, जिस ओर उसका मुख है, वह दिशा अपने स्वामी समेत सुवर्णरूपा हो रही है, अन्दर बाहर सर्वत्र सुवर्ण ही सुवर्ण विराजित है।

सुवर्ण रङ्ग का महत्व इससे अधिक कोई क्या कहेगा, कि जिन सर्वत्यागी, वीतराग संन्यासियों ने तामस, राजस वृत्तियें को शामन करके विशुद्ध सत्वगुण की सुवर्णमयी ज्योति को लाभ किया, वस्त्र रंगने के लिए उन्हे भी सुवर्ण सा कुसम्भिया अथवा गेरुवा रङ्ग ही अच्छा लगा।

ऊपर कहे गुणों केन्द्र और महत्व की पूर्ति और अवतार सुवर्ण है। उस सुवर्ण की लेखनी से लिखने योग्य शब्द 'ओ३म्' के बिना और कौन हो सकता है। ठीक है, महेश्वर के नाम के आगे महेश्वरी माया ही को माथा टेकना चाहिए। मनुष्य सोने के सुन्दर स्वरूप के सामने सारे ससार के स्वामी को विस्मरण न करे न छोडे, किन्तु शोभा के धाम सोने को उसके नाम पर से वारे, सोने को उसके नाम के आगे झुकायें, और सोना, उसका नाम लिखने के लिए घिसायें।

पुत्र पुत्री की जिह्वा पर सबसे प्रथम 'ओ३म्' लिखने का यह भी तात्पर्य्य समझना चाहिए कि बच्चे को सबसे पहले 'ओ३म्' शब्द ही सिखाना उचित है, ऐसा करना एक तो सन्तान पर शुभ संस्कार डालना है, दूसरे 'ओ३म्' अतीव कोमल

होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है, श्रो श्रो तो प्रत्येक बच्चा पुकारा करता ही है, केवल होंठ बन्द करना ही शेष रहता है, और वह भी बच्चे के लिए कठिन काम नहीं। उन माता पिताओं को अपना सौभाग्य समझना चाहिए, जिन की सन्तान बाल्यकाल से आस्तिक भाव के संस्कारों के रङ्ग में रङ्गी जाय, वह सन्तान भी पुण्यवान् है जिसको पैतृक सम्पत्ति की भांति ईश्वर की भक्ति, ईश्वर नाम माता पिता से प्राप्त हुआ है। माता पिता की ओर से इससे बढ़कर सन्तान को देने की कोई वस्तु नहीं, और यह पितृ ऋण का बड़ा भाग है, जिसे सन्तान ने आजन्म स्मरण रखना है।

अन्तकाल में ओ३म् स्मरण

"ॐ क्रतोस्मर" वेद आज्ञा करता है, कि हे मनुष्य ! तेरा आत्मा निकल जाने पर यह देह अन्त मे भस्म है, अतएव 'ॐ' का स्मरण कर। गीता मे श्री कृष्ण ने कहा, कि जो मनुष्य मरण समय भी 'ॐ' का स्मरण करता है, वह परम गति को प्राप्त कर लेता है। महाभारत मे कहा है कि जब द्रोणाचार्य पर धृष्टद्युम्न ने प्रबल प्रहार किया तो आचार्य सम्भल न सके, तन पखेरू से उसके प्राण पखेरू उड़ने लगे, उसी समय समर भूमि मे ज्ञानी ब्राह्मण ने ॐ मे ध्यान लगाना आरम्भ किया और अन्त मे मरण धर्म देह को छोड कर उनका आत्मा 'ॐ' की सीढी से स्वर्गारोहण कर गया।

जिस मनुष्य का अन्त सुधर गया, उसका सब कुछ सुधर गया। महात्माओ के मन मे जिसकी मति अन्त मे भी 'ॐ' मे लग जाय उसका नाश नही होता परन्तु मोह माया मे फसे हुए मनुष्य के लिए अन्त का समय आने आप सुधारना कोई सुगम बात नही है। अन्त सुधारना सन्तान का काम है, पितरो के लिए अन्त समय सन्तान सहारा है, स्वर्ग का द्वार है जैसे

डूबते हुए मनुष्य का आप ही आप, किनारे आजाना बड़ा कठिन है, ऐसे ही मरण काल में मोह माया के सागर में डूबते जन का धर्म धरती पर आ लगना महा कठिन है। मृत्यु और मोह के सागर मे डूबते को बचाने वाला कोई और चाहिए।

पितृ ऋण उतारना सुसन्तान का परम धर्म है। उसके उतारने के कई मार्ग है। सन्तान को सुयोग्य बनाना, गृह धर्म का पालन करना, कुछ धर्मो को निभाना आदि सब कार्य्य पितृ ऋण उतारने के छोटे छोटे भाग हैं, पर सबसे बडा, सब से उतम साधन पितरो को भगवान का नाम स्मरण कराना है, उन्हे आत्म चिन्तन करना है। सन्तान का जन्म होते ही पितरो ने जो 'ओम्' नाम का दान दिया था, सो उनके सदा के प्रस्थान समय यह 'ओम' नाम बार बार उनकी जीभ पर रखना चाहिए और उन्हे स्मरण करना चाहिए।

संसार ओम् रूप है।

अ, उ और म् इन अक्षरो से ओम् बना है। ज्ञानियो की कल्पना मे ओम् के तीन अक्षर ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन अनादि पदार्थो के प्रतिनिधि भी हैं 'अ' से ईश्वर 'उ' से जीवात्मा और 'म्' से माया प्रकृति का ग्रहण किया जाता है। जैसे 'अ' 'उ' और म्' के मिलाप से ओम् बना है, ऐसे ही ईश्वर, जीव और प्रकृति से इस अनन्त विश्व की रचना हुई है, ओम् की रचना मे जिस प्रकार ईश्वर 'अ' और म् मध्य 'उ' की स्थिति है, इसी प्रकार ईश्वर और माया के मध्य विचारने वाला जीवात्मा है। अक्षरो मे 'अ' 'उ' ये दोनो अक्षर स्वर हैं परन्तु 'म्' व्यञ्जन है। स्वर स्वतन्त्र अक्षर होते हैं, और व्यञ्जन अक्षर स्वरो के आधीन होकर बोले जाते हैं। जब तक व्यञ्जन अक्षर मे कोई स्वर न हो, वह बोला नही जा सकता। विश्व मे भी परमेश्वर और जीवात्मा ये दो स्वतन्त्र पदार्थ है, ये अपनी सत्ता और चेतनता से स्वय प्रकाशित होते है, परन्तु कारण रूपा प्रकृति मे यदि ईश्वरेच्छा और जीवात्मा का प्रवेश न हो, तो यह कार्य्य रूप मे कभी भी प्रकट नही हो सकती।

'अ' और 'म्' इन दोनो का मध्यवर्त्ती 'उ' अक्षर यदि 'म्' मे मिल जाय तो उसकी दशा 'मुख' मुह आदि शब्दो के

'म्' मे मिल 'उ' की सी हो जाती है। 'उ' नीचे पडा हुआ है और व्यञ्जन शक्तिहीन 'म्' उसके सिर पर सवार है विश्व रचना मे भी यही समझना चाहिए कि जब स्वर अक्षरवत् स्वतन्त्र जीवात्मा अविद्या वश अपने आपको भूल जाता है और परमात्मा को छाडकर प्रकृति, माया और इस लोक को ही सब कुछ समझने लग जाता है, यो यह माया उकार अक्षर के सिर पर बैठ जाती है इसको अपना दास बना लेती है और जन्म जन्मान्तर के ऊंच नीच नाना नाच नचाती रहती है।

और यदि अकार और 'म्' का मध्य स्थित उकार अक्षर आदि अक्षर 'अ' मे जा मिले तो दानो मिलकर 'ओ' बन जाते है। एक रूप और एक स्वर हो जाते है। 'ओ' के पास यदि व्यञ्जन 'म्' आ भी जाव, तो भी, 'अ' म मिले 'उ' को छू नही सकता, किन्तु 'ओम्' अथवा ओ, के व्यञ्जन 'म्' व विन्दु की भाति पृथक ही पडा रहेगा। ऐसे हो जीवात्मा, परमात्मदेव की उपासना करके जब परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है, तब इसका स्वरूप परमात्मा के गुणो म पूर्ण हो जाता है। परमानद म निमग्न आत्मा को माया बाध नही सकती, उसका स्पर्श नही कर सकती, किन्तु ऊपर कहे हुए म्' व्यञ्जन अनुसार की भाति शक्तिहीन माया, शून्यवत् माया अकिञ्चित् करा हो हो जाती है।

अकार अक्षर यदि 'म्' व्यञ्जन में मिल जाय तो उसका रूप 'म्' इस प्रकार का होता है। 'म्' मे मिला हुआ उकार तो स्पष्ट दीख पडता है, परन्तु अकार दिखाई नही देता। आंखो का विषय नही रहता, केवल मन बुद्धि ही से जाना जाता है। कि 'राम' शब्द के 'म्' मे अकार है, ऐसे ही समझना चाहिए, कि परमेश्वरदेव 'म्' मे अकार की भांति प्रत्येक परमाणु एक २ और अखिल पदार्थों मे रमे हुए हैं परन्तु इन्द्रियो से ग्रहण नही हो सकते। भक्त लोग अपने ज्ञान श्रद्धा और विश्वास ही से ईश्वर सत्ता को सर्वत्र विद्यमान जानते और मानते है।

नाम नामी का सम्बन्ध

'ॐ' अक्षर परमात्मा का नाम है, वाचक है, और सर्वत्र रमी हुई चेतन सत्ता, ज्ञान, आनन्द पूर्ण सत्ता इसका नामी और वाच्य है। ओम् शब्द है और सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा इस का अर्थ है। जैसे जल शब्द का अर्थ द्रवीभूत, पतला, शीत स्पर्शवान पदार्थ, अग्नि शब्द का अर्थ उष्ण स्पर्शयुक्त, तेजोमय पदार्थ है, ऐसे ब्रह्मवस्तु ही 'ॐ' का अर्थ है। वाच्य वाचक का शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है, जैसे गुण गुणी में रहता है, ऐसे वाच्य-वाचक में, अर्थ शब्द में रहता है। भक्ति भाव से भरपूर हृदय युक्त भक्तों को यह निश्चय होना चाहिए कि जिस प्रकार अग्नि में रूप और उष्ण स्पर्श, जल में रस और शीत स्पर्श नित्य रहता है, इसी प्रकार ओम् वाचक में इसका वाच्य, ओम् शब्द ही में इसका अर्थ नित्यता से रहता है, कभी भी पृथक नहीं होता।

कल्पना करो कि एक मन्दिर में प्रज्ञा चक्षुओं की एक मण्डली विराजमान है, एक देव नाम पुरुष को कार्य्यवश वहाँ जाना पड़ा है, किसी व्यक्ति के आने की आहट सुन कर वे सारे सूरदास उसके आस पास चारों ओर बैठ जाते हैं। एक एक सूरदास आगे हाथ फैलाकर देव को अंगुली से पकड़कर

पूछता है, कि आप कौन है ? उत्तर मिलता है कि 'मैं हू देव'। ऐसे ही कोई हाथ, कोई भुजा, कोई पाव और कोई शिर आदि छूकर नाम पूछ रहा है और वह आगन्तुक सबको 'मैं देव हू' यही उत्तर देता चला जाता है। तात्पर्य यह है कि देव नाम एक व्यक्ति का है। हाथ, भुजा और शिर से पाव तक सारे अङ्ग उस व्यक्ति के अङ्ग हैं। सारे अङ्गो का समुच्चय वह व्यक्ति है, इसलिए जिस भी अङ्ग को, उस व्यक्ति के जिस भी देश को स्पर्श करोगे उसी अङ्ग और देश मे 'देव' इस सज्ञा की व्याप्ति है। जितने देश म नामी होगा उतने ही देश मे उसका नाम भी होगा।

परमात्मा,सर्वत्र परिपूर्ण है हमारे मन और अन्त करण मे विद्यमान है, हमारी बुद्धि मे भी उसका प्रकाश है। जिस मनो मन्दिर मे हम 'ॐ जपते है जिस कण्ठ से ॐ की ध्वनि गूञ्जती है, जिस जीभ पर 'ॐ नाम विलास करता है, और जिन कानो मे 'ॐ' की पवित्र ध्वनि पड़ती है, उन सब अगो मे परमात्मदेव परिपूर्ण रूप से विराजमान है। हमारी अस्थि मज्जा और रोम रोम मे रमा हुआ है और तो क्या कहे, ॐ शब्द म ॐ ध्वनि मे भी परमात्मा परिपूर्ण है।

जप काल में भक्त को यह दृढ विश्वास होना आवश्यक है कि ईश्वर मेरे समीपतम है, वह मेरी प्रत्येक स्फुरण को देख

रहा है। जब मैं 'ॐ' शब्द का उच्चारण करता हूं तभी वह प्रेममय गुरु मुझे आशीर्वाद देता है और मुझ पर परम प्रसन्न होता है।

तज्जपस्तदर्थ भावनम्

उस 'ॐ' अक्षर का जप और उस 'ओम' अक्षर का अर्थ चिन्तन करने से चित्त एकाग्र हो जाता है। प्रणव का जप और प्रणव के अर्थ का चिन्तन भक्ति धर्म है। जप से ईश्वर में प्रेम उत्पन्न हो जाता है, विश्वास की मात्रा बढ़ जाने से भक्त भगवान की कृपा का भागी बन जाता है। 'प्रणिधानाद्भक्ति विशेषादावर्जित ईश्वर स्तमनुगृह्णाति" व्यासदेव ने कहा है कि भक्ति से आराधन किया हुआ ईश्वर भक्त पर अनुग्रह करता है'। इसलिए 'ॐ' के जप में मन को लगाना उससे भक्तिभाव को बढ़ाना और अन्त में ईश्वर अनुग्रह का पात्र बनना, योग के जिज्ञासु मुमुक्षुओं का परम कर्तव्य है। यह निश्चित समझना

चाहिए कि यह मार्ग योग का सर्वोत्तम साधक है, और परम योगी व्यासदेव के कथनानुसार "अभिध्यानमात्रेण" ओम का ध्यान करने ही से "योगिन आसन्नतम. समाधि लाभः फलञ्च भवति" योगी को बहुत ही समीप (शीघ्र) समाधि का लाभ और फल मिल जाता है।

पर इस भक्ति में परम प्रेम, अचल विश्वास, दृढ धारणा और निर्दोष श्रद्धा चाहिए।

ओ३म् स्मर ॥

जिस नाम का कोई जप करता है, उसमें उसका प्रेम अवश्य होता है और जिस का उत्कट प्रेम किसी के हृदय मे होता है उस के चित्त मे प्रेमी की चितवन सदा बनी रहती है चिन्तन शब्द का होता है और शब्द नाम है, इसलिए चिन्तन करने का अर्थ मानस जप है। यदि वाणी के साथ मन भी है, तो वाणी का जप बुरा नही है, अच्छा है, परन्तु फिर भी वाचिक जप की अपेक्षा भगवान मनु की आज्ञानुसार बिना होठ आदि हिलाये जो जप क्रिया जाता है, वह 'उपांशु' जप है, और सौगुणा अधिक फलदाता है। मानस जप का महत्व सहस्र गुण अधिक है। मानस जप मे जितना शीघ्रमन रुकता है, उतना वाचिक और उपांशु के अर्थ में व्यासदेव कहते हैं कि 'तदस्य योगिनः

प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च प्रभाववतश्चित्तमेकाग्र सम्पद्यते"
प्रणव को जपते हुए और प्रणव का अर्थ चिन्तन करते हुए, इस योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इस पर व्यासदेव ग्रन्थान्तर का प्रमाण देते हैं "जप से चिन्तन करें और चिन्तन (ध्यान) के पश्चात् फिर जप करे, जप और ध्यान की सिद्धि से परमात्मा का प्रकाश होता है" ॥

सहजाभ्यास

श्वास प्रश्वास के साथ अथवा विना सांस में वृत्ति लगाए 'ओम' का जाप, चिन्तन और ध्यान सहजाभ्यास है। इस अभ्यास का करना, आबालवृद्ध, सबल निर्बल, सब नर नारियों के लिए सहज है, सुगम है, अन्य अभ्यास के मार्गों में बहुत कठिनाइयां हैं आठ पहर चौबीस घण्टे संसार के काम धन्धों में फंसे हुए स्त्री पुरुषों, बुढापे के बोझ से जर्जरीभूत जनों, दुर्बल, क्षीण दीन हीन देहयुक्त मनुष्यों, रोग के दारुण दुःख से पीड़ित प्राणियों और कुसङ्गत कुसंस्कार तथा विषय वासना से सदा चलायमान चित वाले गृहस्थियों से कठिनता युक्त योग साधन सिद्ध होने कितने दुष्कर है, इस का समझना सबके लिए सुगम है। अतएव संसार समुद्र मे जप योग का जहाज एक ऐसा जहाज है,

कि जिस में बैठकर राजा रङ्क मूर्ख पण्डित लूला, लङ्गडा, गुङ्गा, बहिरा, दुबल, दुखिया और बूढा बच्चा सभी पार जा सकते हैं। इस साधन के सभी अधिकारी हैं इस साधन के साधने से अन्य सारे साधन आप से आप सिद्ध होने लग जाते हैं। सारे गुण, सम्पूर्ण कल्याण और सर्व सफलताऐं इस के अभ्यास मे ऐसे प्रवेश करने लग जाती हैं जैसे महासागर मे नदियां।

प्रणव के उपासक को चाहिए कि प्रातःकाल नींद से जागते ही हृदय क्षेत्र मे विचार मात्र उत्पन्न होने से पहिले ओम् का जप करने लग जाय, तत्पश्चात् आवश्यक कार्यों से निवृत हो कर सन्ध्या समय भी प्रणव का पाठ करे। प्रतिदिन नियम पूर्वक दो घडी पर्य्यन्त प्रणव पवित्र का पाठ करने वाले अभ्यासी को प्रभु प्रेम का परिणाम स्वयं प्रतीत होने लगेगा। प्रणव पाठ का सर्वोत्तम समय आधी रात का अवसान और प्रातःकाल है, पर परम प्रेम में समय की मर्य्यादा और नियम नहीं रहता, इसलिए चलते, फिरते, उठते, बैठते जब अवसर हाथ आवे, अपने मन के तीर को प्रणव के लक्ष्य मे खेंच २ कर लगाते रहना चाहिए। चारपाई पर पड़े २ जब तक नींद न आवे, ओम् का ध्यान करते रहना बडा उपयोगी है। एक तो इस से शीघ्र नींद आ जाती है, दूसरे स्वप्न अथवा कुस्वप्न कम आते हैं, और तीसरे सर्वोत्कृष्ट लाभ यह है कि अभ्यासी जब तक सोता रहेगा तब तक प्रणव पवित्र का संस्कार उसके मस्तिष्क में उसके अन्तःकरण मे उसके अन्तरात्मा (सब्जेक्टिव माइण्ड) मे स्फुरित रहेगा, जिससे सारी काया ही भक्तिमई हो जाती है सम्पूर्ण खोटे संस्कार मिट जाते हैं। यहा तक कि

इस आवर्त के सिद्ध होने पर बिना प्रयत्न किए प्रणव पाठ निरन्तर होता है, और शरीर योगमय बन जाता है।

परमात्मा के प्रेमी जन जब किसी अद्भुत दृश्य को देखते हैं, जब कभी किसी घटना का अवलोकन करते हैं, तब व उसी समय ओम् का लम्बायमान उच्चारण करते हैं, इस से मन का एक ऐसा प्रमोद प्राप्त होता है, जो केवल अभ्यास गम्य है। जिस समय चित्त चञ्चल हो अशान्त हो, प्रमोद से पूर्ण हो और प्रणव पाठ से पराङ्मुख होता जाता है, तो उस समय भी 'ओम्' का दीर्घ उच्चारण इसे शान्त और स्थिर बना देता है, किसी एकान्त स्थान नदी के किनारे, शून्य जङ्गल अथवा वन में और जहाँ भी मन में सङ्कोच उत्पन्न न हो, वहाँ प्रणव पवित्र का लम्बे स्वर से गायन और बार२ गायन मन की सारी मलिनता का मिटा कर उसे शुद्ध स्थिर, प्रशान्त भाव प्रदान करता है। ऊपर कहे प्रणव गायन से भक्त के देह में आनन्द की एक विचित्र लहर उठती और सुख की एक अद्भुत धारा सी बह जाती है, जिसका वर्णन वर्णनातीत है।

प्रणव का बार २ पाठ

जो शब्द बार २ कहे जाते हैं, वह स्मरण-शक्ति का अंग बन जाते है। जितनी प्रवल लग्न से कोई शब्द बार २ स्मरण किया जाए, उसका उतना ही प्रबल प्रभाव स्मृति पर पड़ेगा। राग-विद्या सीखने वाले लोग चलते, फिरते कार्य्य करते, संगीत के सुरों को ही अलापते रहते हैं, लग्न वाले विद्यार्थी अपने पाठ को स्वप्न में भी दोहराते रहते हैं, चित्तवृत्तिया या कुएं के जल की भांति है, कुएं में रहते पानी का आकार नही, वस सम है और एक ही स्वाद वाला है पर ज्यों ही अरहट की घाटियों द्वारा खेतों की त्रकोण, चतुष्कोण आदि क्यारियों में पड़ता है तो तुरन्त तदाकार हो जाता है। मिर्च, निम्ब नीबू जामन आम नारङ्गी और सङ्गतरा आदि पेड़ों की जड़ों में जा कर अपना स्वाद भी वदल डालता है, चित्त वृत्तिया भी जैसे अर्थों वाले शब्दों में डालती हैं, वैसे उनके आकार बन जाते है, उन शब्दों के अर्थों के भावों और प्रभावों से सर्वथा प्रभावित हो जाती हैं। जिस रस रङ्ग के शब्द कोई गायेगा, वही रस रङ्ग उसकी चित चादर पर अवश्यमेव चढ जायगा, इसलिए समझना चाहिए कि जो भक्तजन पूर्ण प्रेम और प्रबल भावना से भगवान के नाम प्रणव का स्मरण करते रहते हैं, कालान्तर में उनकी वृत्तियाँ प्रणवाकार हो जाती है, उनकी स्मृति में उतरने वाला प्रणव का रङ्ग और उनके मन में न फीका होने वाला प्रणव का रस बस जाता है।

नव सुत सिमरे सुरभि, ज्यों, त्यों सुमिरो भगवान ।
पनहारी ज्यों कलश का, करो ओम् का ध्यान ।।
सती विरह संतापिता, सुमिरे पति अन आय ।
ओम् नाम सिमरो सदा, अपाय सकल बिसराय ।।
भूखा भोजन को भजे, रङ्क भजे ज्यों दाम ।
सदा प्रेम से सुमरिए, ओम् ईश का नाम ।।
मीन हीन जल से यथा, जल हो में मन दे ।
एक भावना से तथा, ओम् नाम भज ले ।।
आतुर सिमरे औषधी, ज्यों बुभुक्षा तिस्तार ।
ओम् नाम त्यों सुमरिये, तीन लोक का सार ।।
मन मन्दिर में जागेगी, ओम् नाम जब जोत ।
अघ तम का तब नाश हो, बहे सुखों का स्रोत ।।
रस है तीनों वेद का, ओम् नाम अभिराम ।
भाव भक्ति से जो भजे, होवे पूरण काम ।।

परमात्मा भीतर से प्रकाशित होता है।

माना कि पानी पानी कहने से प्यास नहीं बुझती, केवल रोटी पाठ से भूख नही मिटती और अग्नि शब्द के उच्चारण से मुख नही जलने लगता, परन्तु इस वार्ता से किस बुद्धिमान को नकार है कि पानी पानी आदि शब्दों को कोई तभी पुकार करता है जब कि इन वस्तुओ के लिए उस के मन मे महा माँग होती है। कोई भी विचार से देखे तो उसे प्रतीत होगा, कि जगत में जातियो को भौतिक प्रभुता के मधर फल इस मुहा माँग ही के बल से मिले हैं। इसी मानस माँग मे सारी उन्नति निवास करती है और इसी मनोरथ रूपी माँग से प्रेरित होकर मनुष्य उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।

जो भक्त परमात्मदेव के परम पवित्र ओम् नाम मे वार वार अपने मन को लगाते हैं, वे परमात्मदेव की प्राप्ति की अपनी लग्न प्रकाशित करते हैं, वार वार नाम पाठ से भक्त के चित मे समाई हुई अनन्त चेतना की चाह प्रगट होती है। बहुत से दूर स्थित प्राकृत पदार्थों के नाम का पाठ फल सिद्ध रूप न हो, परन्तु फल सिद्धि का प्रबल निमित्त कारण और सिद्धि प्राप्त-कर्त्ता की क्रिया का उपादान कारण अवश्यमेव है।

परमात्मा प्राप्ति की कृया भौतिक पदार्थो की प्राप्ति से सर्वथा भिन्न है। प्रकृति के स्थूल पदार्थ, कर्त्ता के मन से प्रेरित उसकी स्थूल इन्द्रयों की स्थूल क्रिया से प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्राप्त कर्त्ता व्यक्ति से बाहिर के पदार्थ उसकी बाहिर की क्रिया अपेक्षा रहते है, परन्तु परमात्मा सूक्ष्मतम है सब के भीतर परिपूर्ण है, इस लिए विवेक, विचार, ज्ञान और भक्ति आदि साधनों ही से उसकी प्राप्ति होती है, यह सर्व शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है।

'उक्त विवेकादि साधन अन्तरङ्ग साधन है। ये साधन भक्त के अपने आत्मा का प्रकाश है। सच तो यह है कि सब का अन्तरात्मा परमात्मा भक्त के आत्म मन्दिर म विराजमान है उसकी प्राप्ति के लिए केवल प्रम तेल से भरा हुआ ज्ञान का प्रदीप्त दीपक चाहिय रोटी रोटी पुकारता हुआ भूखा भले ही भूखा रह जाय, क्योंकि उसका भोजन उस से दूर है पर भक्त लाग तो जिस चित्त मे ईश्वर का चिन्तन करते है, वही उन का आत्मिक भोजन है, और जिस रसना से सारे रसो के सार आम नाम को जपते है, उसी रसना मे, उसी नाम मे परम तृप्तिकारक अमृत रस विद्यमान है। उस अमृतरस को अनुभव करने के लिए केवल अभ्यास की आवश्यकता है, और मानस तथा वाचिक जप ही का नाम यहाँ अभ्यास है।

'आत्मान चद्विजानीयादयमस्मीति पुरुष ' बचपन से भेडो के गल्ले मे बिचरने वाले सिंह पुत्र को अपने भीतर ही भूला

हुआ सिंहपन प्राप्त करने के लिए "मैं सिंह हूँ" इस पाठ को वार वार जपने की बड़ी आवश्यकता है। इसी पाठस्मरण से उसे विस्मृत सिंहसत्त का बोध होगा। अपने आप को विनाशी और मरणधर्म्मा मानने वाले मनुष्य को उसे अमर अविनाशी स्वरूप का बोध केवल ज्ञान से सम्भव है। आत्मज्ञान आत्मगुणों के बार बार चिन्तन से होता है "मैं अमर अविनाशी, अछेद्य, अभेद्य और चेतन हूं" इत्यादि आत्म स्वरूप बोधक शब्दों के बार बार जाप से अपने भीतर भूला हुआ अपना स्वरूप अपने भीतर ही उपलब्ध होता है, साराश यह कि जैसे अपने आपको बिस्मृत सिंह को अपना सत्ता का ज्ञान, आत्मस्मरण से सम्भव है, और आत्मा का आत्मबोध आत्म चिन्तन से अपने भीतर होता है, ऐसे ही अपने अन्तरात्मा मे व्यापक परमेश्वरदेव का ज्ञान उसके सच्चिदानन्द आदि गुण युक्त ओम् नाम के वार वार स्मरणाभ्यास से स्वात्मा ही में सम्भावित है। किसी शब्द का वार वार चिन्तन मानस जाप के लिए पर्यायवाची शब्द मात्र ही समझना चाहिए॥

चिन्तन कर मम मना ओम् नाम अनमोल।
ज्योति जागती देख ले चित्त किवाडे खोल॥

चिन्तन के प्रभाव से कायर वीर हो जाय।
स्यार सिंह समता गहे भय भारु मे न आय॥

ऊच नीच अच्छा बुरा सज्जन दुर्जन पाप।
जैसी जिस की भावना वैसा हो वह आप॥

चित्त में चिन्तन लग्न से जिस में जिस का हो
कोटि विघ्न को बाध के निश्चय पहुंचे सो ॥

"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"

नाम प्रभाव

इस बात को सभी मनुष्य मानते हैं, कि अशुभ सङ्कल्पों अधम विचारों, नीचभावों, और अपवित्र चिन्तनों के उत्पन्न होने पर मनुष्य का मन मैला हो जाता है। शुभ सङ्कल्पों और शुद्ध भाव आदिकों के उत्पन्न होने से मनुष्य का मन निर्मलता और पवित्रता प्राप्त कर लेता है। किसी दुष्ट नर नारि के स्मरण से चित्त सागर में पाप के तिरङ्ग का उत्पन्न होना बहुत ही सम्भावित है, ऐसे ही किसी सन्त, सज्जन भगवद्भक्त व्यक्ति के ध्यान से अपने भीतर शुभ भाव, शुभ सङ्कल्प और सज्जनता की लहरों का उठना स्वाभाविक है। सभी गुणों के समूह पवित्र ओम् नाम के समान शुद्ध पवित्र और निर्मल दूसरा कोई सङ्कल्प, कोई भाव, कोई चिन्तन और विचार नहीं हैं। अन्तः-

करण की सम्पूर्ण वृत्तियो मे सर्वोत्तम वृत्ति परम पवित्र वृति भक्ति वृत्ति है। परम पवित्र परमात्मदेव है, अतएव ओम् पवित्र के चिन्तन मात्र से मनुष्य के मन मे पवित्रता को धारा बहने लगती है। मन की मलीनता धुल धुल कर दूर होने लग जाती है। ओम् नाम का प्रभाव अन्य सम्पूर्ण प्रभावो से प्रबल है।

विषूचिकादि महारोगो के दिनो मे सर्व साधारण को वैद्य लोग शिक्षा दिया करते हैं, कि महारोग का ध्यान व चिन्तन नही करना चाहिए। इस के ध्यान से हृदय दुर्बल होने लगता है इसकी रुचि रोग को ओर झुक पडती है, और अन्त मे मनुष्य रोग के पञ्जे मे पड जाता है। प्रसिद्ध वैद्य मण्डल मे यह बात मानी गई है, कि रोगो का बीज रोगो का ध्यान है। जो प्रत्येक पदार्थ के उपयोग मे वात, पित्त, कफ की प्रतिमा देखते रहते हैं, जो पाँव पाँव पर शकुन सोचते रहते है, जो बात बात मे शीत उष्ण का विचार रखते हैं, मित्र मण्डल मे बैठकर जो अपने रोगो की कथाए किया करते हैं, और जिनकी काया मे रोग के नाम मात्र से कपकपी तथा फुरफुरी उठती रहती है वह अपने ऊचे स्वर से रोगो को निमन्त्रण देते है। नाना रोग उनकी देह मे बने ही रहते हैं। देशी विदेशी सब चिकित्सा कर लेने पर भी उन का पिण्ड छूटने नही पाता।

जब रोग के ध्यान का इतना प्रभाव है, कि उसका चिर तक ध्यान रहने से हमारो देह का सर्वनाश तक सम्भव हो, तो

क्या कोई भी ऐसा विश्वासी होगा जो यह मानता हो कि ओम् के चिन्तन और ओम् नाम के ध्यान का प्रभाव हमारी काया हमारे अन्त करण और आत्मा पर कुछ भी नही पडता ? और यह ध्यान रोग के ध्यान से गया बीता है? अहो ! जिस ओम् अक्षर मे ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थ ओत प्रोत हैं, जिस ओम के ईक्षण इच्छा से परमाणु २ तक प्रभावित हैं, और जो सब का अन्तरात्मा है, उस के चिन्तन और ध्यान के प्रभाव सदृश अन्य किस वस्तु का प्रभाव हो सकता है।

सर्व साधारण की यह मानी हुई बात, कि खोटे सस्कारो से मनुष्य का मन मलीन हो जाता है। किसी का कुवचन कहने से और गाली देने से मनुष्य का हृदय दूषित और अन्त करण कलुषित हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी जन पर शुभ संस्कार डाले जायेंगे, तो वह शुद्ध हो जायगा, उसके मन स कुसस्कारो की धूल धुल जायगी। शुभ शब्द उच्चारण करने से पवित्र पदो के पाठ से सत्य, हित और मधुर वचन बोलने से मनुष्य के अन्त करण की कालिख और हृदय की अपवित्रता अवश्य मेव दूर होवगी।

ओम् सब सच्चाइयों का केन्द्र, परम पवित्रताओ का प्रभाव और सकल शुभ सस्कारो का मूल कारण है, इस लिए जो पवित्रता, जो विमलता, जो शुभ ओम् गान, ओम् जप, ओम् चिन्तन, ओम् आराधन और ओम् ध्यान से प्रभु प्रेमी को

प्राप्त होता है वह अतुल है, वर्णन से बाहर है, केवल अभ्यासी जन उसे जान सकते है।

महा मिथ्यावादी के साथ यदि असत्य वचन से व्यवहार किया जाय तो वह खिजने लगता है। छलो, कपटी, दम्भी, कुसस्कारी से भी यदि छलादि से कोई वर्त्ते तो उसके क्रोध को काई सीमा नही रहती। कितना हो कोई गन्दी गाली बकने वाला क्यों न हो पर अपने लिये गाली सुनना पसन्द नही करता। रात दिन दूसरो की मार धाड लूट खसोट मे सुख मनाने वाले तस्करादि अत्याचारी जन, जब उन के सङ्ग ऐसा वर्ताव होने लगे, तब मरने मारने पर उतर आते है, और अपवित्र से अपवित्र मनुष्य भी अपने लिए अपवित्रता स्वीकार नही करता इस से पण्डित लोग इस परिणाम पर पहुचते हैं, कि सारे ससार मे किसी भी मनुष्य की सहानुभूति पाप, अपवित्रता, और अशुभ के साथ नही है, क्योंकि प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने लिए दूसरो से शुभ चाहते हैं, पुण्य कर्म मागते और पवित्र व्यवहार की प्रतीक्षा करते हैं, और यह भी सभी जानते है, कि रोग मात्र को कोई नही चाहता। किसी रोग से कोई भी जन सहानुभूति नही करता।

जब मरुस्थल मे खडे एक क्षुद्र पेड के पत्ते पर पडे हुए जल विन्दु की भाति, पापमय सङ्कल्प, अशुभ वचन मलिन विचार,

दुष्ट सस्कार और सम्पूर्ण रोग नि स्सहाय हैं, सहानुभूति रहित हैं, परन्तु तब भी इन का प्रभाव इतना प्रबल माना जाता है, कि इन के चिन्तन और ध्यानादि ही से मनुष्य अपवित्र मलीन तथा रोगी हो जाता है, तब सोचना चाहिए कि उस 'ओम्' के चिन्तन, जप और ध्यान का कितना प्रबल प्रभाव होगा जिस के साथ सारे ससार की सहानुभूति है। तब सन्तों के शुभ सङ्कल्प, सकल महात्माओं की मङ्गल कामनाएँ, अखिल भक्तों की शुद्ध भावनाएं हैं, जिन के सर्वोपरि सहायक परमात्मदेव स्वय हैं।

श्रोम् उपासना का फल

सकल अदृश्य अमूर्त्त पदार्थों का ज्ञान शब्द द्वारा होता है, इस लिए श्रोम् नाम का स्मरण ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र कारण है। यह स्मरण शुभ और पवित्रता प्रदान करता है। इस श्रोम् जप गङ्गा मे स्नान करने से मन के सारे मल उतर जाते है। पूर्व जीवन मे कितना हो कोई पापी क्यो न रहा हो, पर श्रोम् के निरन्तर पाठ से पवित्र हो जायेगा। श्रोम् ध्यान से 'प्रत्येक चेतनाधिगमोऽप्यन्तराया भावश्च" अन्तरात्मा का ज्ञान, प्राप्ति और रोगादि विघ्नो का विनाश होगा। श्वेताश्वतर उपनिषद मे कहा है "अपनी देह (हृदय) को अरणी लकडी बना कर श्रोम् नाम का दूसरी अराणी बनावें। इन दोनो के बार २ रगडने (हृदय सें श्राम् जपने) से परमात्मदेव के दर्शन कर" इस नाम के अभ्यासी के नेत्र पलास के पत्ते की भाति विस्तृत और् लिखे हुए दिखाई देंगे। उन मे प्रेम परिपूर्ण होगा, श्रोम् भक्त का मुख पद्म, प्रफुल्लित सौम्य और तेजोमय रहेगा। श्रोम् उपासक

को बाणी मधुर्वापिणी और आकर्षिणी होगी और ओम् आश्रित का हृदय प्रसन्नता से भरपूर हो जायेगा ॥ जैसे चुम्बक से मिलकर लोहा भी चुम्बक हो जाता है ऐसे ही ओम् की उपासना से उपासक परमात्मदेव के दिव्य गुणों को धारण करके परमानन्द को उपलब्ध कर लेता है। ओम् !। ओम् !! ओम् !!

ओम् प्रेम हो भक्त मे, जैसे चांद चकोर ।
एक तार देखे उसे, करे सायं से भोर ॥
नाचे सुन के मेघ को, जैसे नाद मयूर ।
सारे तन मे ओम से, बढ़े प्रेम का पूर ॥
आकर्षित्र होवें यथा, लोह चुम्बक को पा ।
तथा ॐ के ध्यान मे खिच जाइए मन ला ॥
तुला ध्यान की धारियें, पलड़े प्राणापान ।
शब्द रत्न तोलो तहां, चित वृत्ति को तान ॥
बहती धारा चित्त की, उल्टी येह प्रपात ।
प्रकटे त्रिकुटी कुण्ड मे, सौदामिन संघात ॥
पुतली धनु का तानकर, मारिए नाम का तीर ।
दर्शन सुन्दर ज्योति का, हरे पाप का पीर ॥

इति समाप्तः

अशुद्धि पत्र संशोधन

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
टाईटल पेज भीतर			
नामावलो म	३	हारीनन्द	हीरानन्द
३	७	भारमेसी	फारमेसी
,,	६	वाना	वाला
,,	६	अनुभवो	अनुभवो
,,	,,	आश्चय्य	आश्चर्य्य
५	१०	अधिका	अधिक
,,	१२	मिनना	मिलना
७	५	हा	हो
११	१४	व व	व
१०	८	आस्ति	अस्ति
११	८	जा	जो
११	१४	आभाव	अभाव
१२	६	वण	वर्ण
१३	१	पूर्णतय.	पूर्णतया
१४	४	क्ण्ट	कण्ठ

[illegible]	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	१२	वेदोऽास	वेदोंऽसि
,,	२	श्राय्य	श्राय्यं
४८	३	योगिन	योगित्त
,,	१५	हिनाय	हिलाय
४९	१४	स्त्रा	स्त्री
५२	५	करो	करते
,,	१६	जस	जिस
५३	१२	स्त्रात	स्रोत
५४	९	मघर	मधुर
६१	७	श्राखल	श्रखिल
६३	४	हा	ही
,,	११	श्रार्कपिय	श्रार्कपित